आचारांग सूत्र का मुख्य संदेश : अहिंसा और असंगता

श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

आचारांगसूत्र में साधना के सूत्र बिखरे पड़े हैं। जैन ग्रन्थों के प्रसिद्ध सम्पादक श्री श्रीचन्द जी सुराणा 'सरस' ने अपने आलेख में आचारांग की विषयवस्तु की संक्षेप में चर्चा करते हुए अहिंसा एवं असंगता के संदेश को उजागर किया है।–**सम्पादक**

आचारांग सूत्र एक ऐसा क्षीर समुद्र है जिसमें स्वाध्याय द्वारा जब भी अवगाहन/निमज्जन करता हूँ तो कोई न कोई दिव्य मणि हाथ लग ही जाती है।

अंग सूत्रों में यह पहला अंग है, किन्तु इससे भी बड़ी बात आचार्य भद्रबाहु ने कही है कि यह समूचे अंग सूत्रों का सार है– **अंगाणं किं सारो? आयारो।** इसका प्रतीकात्मक अर्थ इतना ही नहीं है कि 'आचार' अंग सूत्रों का सार है, किन्तु इस सम्पूर्ण आगम को लक्ष्य करके भी यह कहा गया है कि इसमें आचार-विचार, ध्यान-समाधि आदि सभी विषयों का चिन्तन बीज रूप में सन्निहित है। प्राचीन मान्यता है कि इस एक आगम का परिशीलन/अनुशीलन कर लेने पर सम्पूर्ण अंग सूत्रों के रहस्य ज्ञान की चाबी हाथ लग जाती है। अगर इस आगम का स्वाध्याय नहीं किया तो वह मुनि श्रमण धर्म का ज्ञाता नहीं कहलाता, न ही वह आचारधर बनता है, न ही गणिपद का पात्र बन सकता है।

"आयारम्मि अहीए जं नाओ होइ समणधम्मो उ।
तम्हा आयारधरो भण्णइ पढमं गणिट्ठाणं।।" –निर्युक्ति 10

निर्युक्ति एवं टीका आदि के अनुसार आचारांग के १८ हजार पद हैं। संभवतः रचना काल में इतने पद रहे होंगे, किन्तु आज तो बहुत कम पद बचे हैं। इसका अर्थ है आचारांग का बहुत बड़ा भाग विच्छिन्न हो गया है। विक्रम की प्रथम शताब्दी तक इसका महापरिज्ञा अध्ययन विद्यमान था, जो आज उपलब्ध नहीं है। आचार्य वज्रस्वामी ने उससे गगनगामिनी विद्या उद्धृत की थी (आवश्यक निर्युक्ति, मलयगिरि वृत्ति) किन्तु टीकाकार अभयदेव सूरि (आठवीं शताब्दी) के पूर्व वह भी विच्छिन्न हो चुका था(अभयदेव वृत्ति)। चूर्णि के अनुसार महापरिज्ञा अध्ययन में अनेक विद्याएँ, मंत्र आदि का वर्णन व साधना विधियाँ थी। काल प्रभाव से उनका अध्ययन अनुपयुक्त समझा गया, इसलिए तात्कालिक आचार्यों ने उसको असमनुज्ञात कहकर पठन–पाठन निषिद्ध कर दिया। इतना सबकुछ लुप्त–विलुप्त हो जाने के पश्चात् भी आचारांग आज जितना बचा है, वह भी बहुत है। महासमुद्र से कितने ही रत्न निकाल लिये जायें वह तो रत्नाकर ही रहता है।उसका भण्डार रिक्त नहीं होता। आचारांग के संबंध में भी यही कहा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचारांग सूत्र का प्रथम उद्घोष— आत्मबोध से प्रारम्भ होता है। ब्रह्मसूत्र जिस प्रकार **अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा** से प्रारम्भ होता है। आचारांग भी भाव रूप में **अथातो आत्म-जिज्ञासा** से आरम्भ होता है और आचारांग का अन्तिम रूप आत्म.साक्षात्कार के शिखर तक पहुँचा देता है।

'आचार' शब्द से ध्वनित होता है कि इस सूत्र का प्रतिपाद्य आचार धर्म है। 'आचार' का अर्थ यदि 'चारित्र' तक सीमित रखें तो यह अर्थबोध अपूर्ण है, अपर्याप्त है। आचार से यदि हम पंचाचार का बोध करते हैं तो अवश्य ही इस आगम में ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और विनयाचार रूप आचार धर्म का संकेतात्मक सार उपलब्ध है। आचारांग में तत्त्व दर्शन के मूल आत्मदृष्टि से संबंधित सूत्र उद्यान में फूलों की तरह यत्र. तत्र बिखरे हुए हैं।

आचार्य सिद्धसेन ने जैन तत्त्व दृष्टि के आधारभूत छह सत्य स्थान बताये हैं—

"अत्थि अविणासधम्मी करेइ वेदइ अत्थि निव्वाणं।
अत्थि य मोक्खोवाओ छ सम्मत्तस्स ठाणाइं।।" —सन्मति प्रकरण 3/55

१. आत्मा है २. आत्मा अविनाशी है ३. आत्मा कर्मों का कर्त्ता है ४. आत्मा ही कर्मों का भोक्ता है ५. कर्मों से मुक्ति रूप निर्वाण है ६. निवार्ण का उपाय भी है।

ये छह चिन्तन सूत्र सम्यक्त्व के मूल आधार माने गये हैं। आत्मवाद का सम्पूर्ण दर्शन इन्ही छह स्तम्भों पर आधारित है। आचारांग सूत्र में ये छह सूत्र यथाप्रसंग अपने विस्तार के साथ उपलब्ध हैं और उन पर सूत्रात्मक चिन्तन भी है।

1. अत्थि मे आया— मेरी आत्मा है, वह पुनर्जन्म लेने वाली है। इसी सूत्र से आचारांग की सम्पूर्ण विषय वस्तु का विस्तार होता है।

2. जो आगओ अणुसंचरइ सोऽहं— जो इन सभी दिशाओं—अनुदिशाओं में, सम्पूर्ण जगत् में अनुसंचरण करता है, जो था, है और रहेगा, वह मैं ही हूँ। इस सूत्र में आत्मा का अविनाशित्व सूचित किया गया है।

3. पुरिसा, तुममेव तुमं मित्तं—जीवेण कडे पमाएणं— "हे पुरुष! तू ही तेरा मित्र है, तू ही तेरा सुख—दुःख का कर्ता है। यह सब दुःख जीव ने ही प्रमादवश किये है।" यह आत्म-कर्तृत्व का संदेश है।

4. तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु— "हे पुरुष! तू ही अपने शल्य का उद्धार कर सकता है।" अपने कृत कर्मों को स्वयं ही भोग करके निर्जरा करने का संदेश इस सूत्र में व्यक्त होता है।

5. अणण्ण-परमणाणी णो पमायए कयाइ वि— ज्ञानी पुरुष अनन्यपरम— जो सबसे श्रेष्ठ है और परम है वह निर्वाण, उस निर्वाण की उपलब्धि के लिए क्षण मात्र भी प्रमाद न करे। यह कर्ममुक्ति रूप निर्वाण का संकेत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. इस आगम के प्रत्येक अध्ययन में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र रूप निर्वाण उपाय का प्रतिपादन मिलता है।

इस प्रकार आचारांग सूत्र में अध्यात्म के मूल आधार 'आत्मवाद', आत्म विवेक और आत्म-शुद्धि के विविध उपायों का वर्णन है, जो इस आगम को आत्मवाद का आधारभूत शास्त्र सिद्ध करते हैं।

आचारांग का प्रथम अध्ययन **'शस्त्र परिज्ञा'** है। शस्त्र यानी हिंसा तथा हिंसा के साधन। इस अध्ययन में षड्जीव निकाय में चेतन सत्ता की सिद्धि करते हुए उनकी हिंसा के कारण व विरोधी शस्त्रों का वर्णन करते हुए सर्वत्र जीव हिंसा से उपरत रहने का संदेश है। **अत्थि सत्थं परेण परं**– शस्त्र एक से एक बढ़कर हैं, भयंकर हैं– इस वाक्य ने आधुनिक विज्ञान द्वारा निर्मित अत्यन्त तीक्ष्ण/घातक शस्त्रों के प्रति सावधान किया है और शस्त्र प्रयोग का मूल असंयम मानकर मूल पर ही प्रहार किया गया है। 'असंयम' के कारण ही हिंसा की जाती है, इसलिए इस अध्ययन का मुख्य संदेश संयम है।

द्वितीय **'लोक विजय'** अध्ययन का मुख्य संदेश आसक्ति विजय है। **जे गुणे से मूलट्ठाणे**– जो इन्द्रिय विषय हैं, वही संसार है। इसी संसार रूप लोक को विजय करने का उपाय बताया है– **लोभं अलोभेणं दुगुंछमाणे**– लोभ को संतोष से, कामनाओं को निष्कामता से जीतो। विरक्त वीतराग ही संसार का विजेता बनता है।

इसी प्रकार इसके सभी नौ अध्ययन जीवनस्पर्शी हैं और बाह्याचार की जगह अन्तर आचार, तितिक्षा, विरक्ति, परिग्रह त्याग, असंगता, समाधि, ध्यान आदि विषयों पर केन्द्रित हैं।

आचारांग में अपनी सामयिक विचारधाराओं पर भगवान महावीर का अपना स्वतंत्र व सार्वभौम चिन्तन भी स्पष्ट झलकता है। उस युग में वैदिक विचारधारा के अनुसार 'अरण्य–साधना' का विशेष महत्त्व था। अरण्यवाद को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता था, किन्तु भगवान महावीर ने इसमें संशोधन प्रस्तुत किया और कहा– यह एकान्त सत्य नहीं है कि अरण्य में ही साधना हो सकती है– **गामे वा अदुवा रण्णे**– साधना गांव में भी हो सकती है, नगर में भी। जहां भी चित्त की निर्मलता और स्थिरता सध सके वहीं पर साधना की जा सकती है।

स्मृतियों के अनुसार शूद्र धर्म सुनने का अधिकारी नहीं था। केवल उच्चवर्ण को ही धर्मसभाओं में जाने और शास्त्रचर्चा करने का अधिकार प्राप्त था। इसके विपरीत भगवान महावीर ने उद्घोष किया– **जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ।**

साधक सबको समान भाव से धर्म का उपदेश करे। उच्च या पुण्यवान को भी और दरिद्र को भी धर्म का उपदेश करे। इसी प्रकार वैदिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य में जहां जाति को महत्त्व दिया गया है, वहां भगवान महावीर ने इस मान्यता के विरुद्ध सर्वत्र समता का सिद्धान्त निरूपित किया है– **णो हीणे णो अइरित्ते**– न कोई हीन है, न कोई उच्च है।

आचारांग सूत्र में समसामयिक साधना और धर्मधारणा का व्यापक प्रभाव है और उन सब पर भगवान महावीर के स्वतंत्र समत्वमूलक चिन्तन की गहरी छाप है।

अपरिग्रह का महान दर्शन

आचारांग का अध्ययन करने वाले विद्वान इसे अहिंसा और पर्यावरण के सिद्धान्तों का प्रतिपादक आगम मान लेते हैं। पर्यावरण अहिंसा से ही संबंधित है और अहिंसा के लिए आचारांग का प्रथम अध्ययन–**सत्थ परिण्णा**, बहुत ही व्यापक दृष्टि देता है।

अहिंसा की स्पष्ट दृष्टि एक ही सूत्र में व्यक्त कर दी गई है– **आयतुले पयासु–एयं तुलमन्नेसिं**– तू दूसरों को अपने समान ही समझ। सबके सुख दुःख को अपनी आत्मानुभूति की तुला पर तोलकर देख।

भगवान महावीर का चिन्तन है– हिंसा तो एक क्रिया है, एक मनोवृत्ति है। इसका मूल प्रेरक तत्त्व तो आसक्ति, तृष्णा या परिग्रह है।

अर्थशास्त्र तथा समाज मनोविज्ञान की दृष्टि से मानव विकास का प्रेरक तत्त्व है– अर्थ के प्रति राग। वस्तु-प्राप्ति की इच्छा और उसके लिए प्रयत्न। किन्तु भगवान महावीर कहते हैं–वस्तु के प्रति राग और प्राप्ति के लिए प्रयत्न से जीवन में कभी भी शांति और आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। जीवन का लक्ष्य सुख नहीं, आनन्द है और आनन्द का मार्ग है–संतोष, आसक्ति का त्याग, परिग्रह विमुक्ति। इसलिए आचारांग में स्थान–स्थान पर आसक्ति त्याग और कषाय मुक्ति का उपदेश दिया गया है।

परिग्रह की वृत्ति ही हिंसा को प्रोत्साहित करती है। परिग्रह के लिए ही हिंसा का साधन रूप में प्रयोग होता है। इसलिए भगवान महावीर ने हिंसा का वर्जन करते हुए उसकी मूल जड़ परिग्रह तथा विषय-आसक्ति का त्याग करने का उपदेश दिया है।

आसं च छन्दं च विगिंच धीरे– आशा, तृष्णा और विषयेच्छा को छोड़ने वाला ही धीर है।

एयं पास! मुणी महब्भयं

हे मुनि! देख, यह तृष्णा, सुखों की अभिलाषा ही संसार में महाभय का कारण है। यही सबसे बड़ा पाप है।

आचारांग सूत्र का परिशीलन करते हुए ऐसा अनुभव होता है कि इसका एक–एक सूत्र, एक–एक शब्द अपने आपमें एक शास्त्र है, एक पूरा दर्शन है। ध्यान, समाधि अनप्रेक्षा, भावना, काम विरक्ति, अप्रमाद, कषाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजय, परीषह विजय, तितिक्षा, विनय, कर्म लाघव, उपधि त्याग आदि ऐसे सैकडों विषय हैं जिन पर यदि साधक चिन्तन करे, उनकी भावना करता रहे तो प्रत्येक सूत्र में से जीवन की दिव्यता का, भावों की श्रेष्ठता का निर्मल प्रकाश प्राप्त हो सकता है।

सारांश रूप में दो शब्दों में आचारांग का संदेश व्यक्त किया जा सकता है-- १. सर्वत्र सब जीवों के प्रति समत्वभाव की अनुभूति और २. आन्तरिक विकारों पर विजय। अर्थात् अहिंसा और असंगता-- आचारांग का मूल संदेश है।

–ए 7, अवागढ हाउस, एम.जी.रोड, आगरा (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org